A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

भारतीय नाट्य में नृत्य की योजना

Dr Kuldeep Raina, Associate Professor, GDC, Bishnah, Jammu, J&K UT

OPEN ACCESS

सार

नाट्य शब्द नृत्य, गीत और वाद्य के समुदाय, रूप, अर्थ को प्रकट करता है। भारतीय नाट्य परंपरा की यह विशेषता रही है कि विश्व की सभी कलाएं संगीत, अभिनय, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाए, इसी कला में समाहित है, हज़ारों वर्ष प्राचीन यह परंपरा कई दौर एवे परिवर्तनों से गुज़री है। भारतीय नाट्य में नृत्य का प्रयोग सम्भवतः नाट्योत्पत्ति जितना ही प्राचीन है। अभिनवगुप्त पूर्वपक्ष का उपस्थापन करते हुए कहते हैं कि नृत्त और नाट्य दोनों में ही गात्रविक्षेप होता है और वे दोनों समानार्थक हैं तथा दोनों का स्वभाव और प्रयोजन भी एक है। अतः नृत नाट्यरूप है तथा नृत्य भी नाट्यरूप ही है। इस पर कहते हैं कि रेचक और अंगहार रूप नृत गात्रविक्षेपण रूप होता है। वह किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं करता और 'नाट्य' साक्षात्कारकल्प अनुव्यवसायात्मक ज्ञान रूप है। वह वाक्र्याथ रूप होता है। इस प्रकार नृत्त नाट्य से भिन्न है। नृत्त में रस, और भाव की अप्रधानता होती है। और नाट्य में रस और भाव की प्रधानता होती है। वात्तिककार हर्ष का कथन है। कि नृत और नाट्य दोनों में रस, भाव, दृष्टि, हस्त आदि अंगों का पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप मे अनुकरण किया जाता है।

मुख्य शब्द:- *नृत्य, नाट्य, अंगहार, रेचक, भाव, रस*

भूमिका

गीत वाद्य जब आंगिक मुद्राओं व भावभंगिमाओं का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया जाता है तो वह और भी आकर्षक प्रतीत होता है। यही क्रिया नृत्य में होती है। नटन या नर्तन की दूसरी विधा नृत्य है। इसमें भाव-प्रदर्शन के साथ अंग-संचालन होता है अर्थात् इसमें अंग-संचालन के द्वारा भाव-विशेष प्रदर्शित किये जाते हैं और पदार्थों का अभिनय किया जाता है। (पदार्थाभिनयो नृत्तम्)। नन्दिकेश्वर क अनुसार रस, भाव और व्यंजना से युक्त जो अभिनय किया जाता है उसे 'नृत्य' कहते हैं।

भारतीय नाट्य में नृत्य का प्रयोग सम्भवतः नाट्योत्पत्ति जितना ही प्राचीन है। इसे नाट्य को अलंकृत करने के उदेश्य से ही इसमें सम्मिलित किया गया। नृत्य किसी अर्थ विशेष की अभिव्यक्ति की उपयोगिता से रहित है, परन्तु इसे नाट्य में शोभा की सृष्टि के लिए संयोजित किया जाता है। इसका प्रयोग नाट्य में पूर्वरंग की शोभा और सौंदर्य प्रसार के लिए होता है। अभिनवगुप्त पूर्वपक्ष का उपस्थापन करते हुए कहते हैं कि नृत्त और नाट्य दोनों में ही गात्रविक्षेप होता है और वे दोनों समानार्थक हैं तथा दोनों का स्वभाव और प्रयोजन भी एक है। अतः नृत नाट्यरूप है तथा नृत्य भी नाट्यरूप ही है। इस पर कहते हैं कि रेचक और अंगहार रूप नृत गात्रविक्षेपण रूप होता है। वह किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं करता और 'नाट्य' साक्षात्कारकल्प अनुव्यवसायात्मक ज्ञान रूप है। वह वाक्र्याथ रूप होता है। इस प्रकार नृत्त नाट्य से भिन्न है। नृत्त में रस, और भाव की अप्रधानता होती है। और नाट्य में रस और भाव की प्रधानता होती है। वात्तिककार हर्ष का कथन है। कि नृत और नाट्य दोनों में रस, भाव, दृष्टि, हस्त आदि अंगों का पूर्ण अथवा अपूर्ण रूप मे अनुकरण किया जाता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार यह प्रसंग है कि ब्रह्मा के आदेश अनुसार भरत ने शिव जी के समक्ष 'अमृत मन्थन' तथा 'त्रिपुरदाह' नामक नाट्य प्रस्तुत किये, तो शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और ब्रह्मा से बोले ''सन्ध्या के समय मैनें अंगहारों और करणों से युक्त नृत्य का निर्माण किया है और आप इस नृत्य को अपने नाट्य की पूर्वरंग विधि में प्रयोग करें। जब ब्रह्मा ने शिवजी से अंगहारों के विषय में व्याख्या करने का निवेदन किया। तब शिव ने तण्डु को बुलाकर कहा कि भरतमुनि को अंगहारों का विधान बताएं। कुछ विद्वानों का कथन है कि यह नृत्य विद्या शिव जी के निर्देश पर तण्डु ने भरत को दी थी, इसी कारण इसे ताण्डव भी कहा गया है।

भरत ने जो पूर्वरंग अपनी नाट्य प्रस्तुति में शिव के समक्ष प्रस्तुत किया था वह शुद्ध पूर्वरंग था। शिव के द्वारा निर्मित नृत्य के समावेश के बाद वह पूर्वरंग 'चित्रा पूर्वरंग' कहलाया। महेश्वर शिव के द्वारा निर्मित 'ताण्ड' नृत्त का जो नाट्य में प्रयोग करता है वह सभी पापों से मुक्त हो शिव लोक को प्राप्त होता है। यह मनुष्य को स्वाभाविक तौर पर इष्ट है, मंगलप्रद भी है, इसीलिए इसका सृजन किया जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि नृत्यकला को एक पवित्र और कल्याणकारी कला माना गया है:

नाट्य शास्त्रा के अनुसार ताण्डव नृत्तद्ध देवताओं की वन्दना की हेतु, ही किया जाता है। यह श्रृंगार रस से युक्त तथा अदभुत सुकुमार भावों के प्रयोग से सम्बद्ध भी हो सकता है। नाट्यशास्त्र में दो प्रकार के नृत्यों का वर्णन मिलता है – (1) ताण्डव तथा (2) लास्य

- **ताण्डव:** इसकी उत्पति का श्रेय शिव को प्राप्त है। यह पुरुषों का उद्धत नृत्य माना जाता है। 'ताण्डव' नृत्य वीररस-प्रधान होता है। इसके अंगसंचालन कठोर होते हैं इस कारण इसे पुरुषों के लिए उपयुक्त माना जाता है। इसमें पदाघात काफी शक्तिशाली होते है। शिव की विराट शक्ति और उनके भिन्न-भिन्न रूपों का प्रदर्शन होता है।
- **लास्य:** इसकी उत्पत्ति का श्रेय पार्वती को प्राप्त है - इसे सुकुमार नृत्य माना जाता है। इसे स्त्री-प्रयोज्य नृत्य माना जाता है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता रहती है। यह नृत्य कोमलता का प्रतीक है इसी कारण स्त्रीयों के लिए ही उपयुक्त माना जाता है।

संगीत रत्नाकर में ताण्डव और लास्य के तीन-तीन भेद बताये गये हैं:

विषम 2) विकट तथा 3) लघु

- **विषम:** इसमें भालों, छुरियों और बाणों के मध्या रस्सियों से परिभ्रमण किया जाता है।
- **विकट:** इस में रंग-बिरंगी विकृत-वेश-भूषा के साथ नृत्य किया जाता है।
- **लघु:** इसमें अल्प साधनों का अवलम्बन कर उछल-कूद कर नृत्य किया जाता है।

नर्तन-निर्णय में ताण्डव के दो भेद बताए गए हैं। (1) पेलवि और (2) बहुरूपक

लास्य के भी दो भेद बताए गए हैं। (1) छुरित और (2) योवत

भरर्ताणव में ताण्डव के दो प्रकार बताए गये हैं। (1) शुद्ध नाट्य और (2) देशी नाट्य

1) पुनः शुद्ध नाट्य के सात प्रकार बताए गए हैं:
(1) दक्षिण भ्रमण, (2) वामभ्रमण, (3) लीलाभ्रमण, (4) भुजंगभ्रमण (5) विद्युतभ्रमण (6) लता भ्रमण तथा (7) ऊधर्वताण्डव

इनमें से प्रत्येक ताण्डव गति, करण, चारी और ताल से युक्त होता है।

2) देशी नाट्य में ताण्डव के पाँच प्रकार बताए गए हैं

(1) निकुन्चित (2) कुन्चित (3) आकुन्चित (4) पाश्र्वकुन्चित तथा (5) अर्थकुन्चित

इसके अतिरिक्त लास्य के भी पाँच प्रकार बताए गए हैं

(1) प्रेरणी (2) प्रेंखणी (3) कुण्डली (4) दण्डिक तथा (5) कलश

नाट्यशास्त्र में बारह प्रकार के लास्यों का निर्देश है।

(1) गेयपद (2) स्थितपाठ्य (3) आसीन (4) पुष्पगण्डिका (5) प्रच्छेदक (6) त्रिगूढक (7) सैन्धव (8) द्विमूढक (9) उत्तमोत्तमक (10) उक्तप्रत्युक्त (11) भावित (12) विचित्रपद

'नृत्त' को अंगहारों तथा करणों पर आश्रित अभिनय माना गया है। जिसका पूर्ण विवरण भरत ने दिया है।

नृत्य में करण

नाट्यशास्त्र के अनुसार एक पैर से किये जाने वाले अभिनय को 'चारी' और दो पैरों के संचालन से किये जाने वाले अभिनय को 'करण' कहा गया है। नृत्य में हस्तों तथा पादों की गतियों को 'करण' कहा गया है। करणों का उपयोग सामान्य तथा विस्तृत रूप से नृत्य प्रयोग में तो किया ही जाता है। परन्तु कभी-कभी अभिनय के मध्य बचने वाले समय की पूर्ति के लिए भी किया जाता है, आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार मत्त में शास्त्रादि युद्ध, बाहुयुद्ध तथा नृत्य सौष्ठव के लिए भी करणों का व्यवहार होता है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में 108 करणों की व्याख्या लक्षणों सहित की है। जिनका नाट्य में आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है।

नृत्य में अंगहार

नृत्य का अन्य महत्त्वपूर्ण घटक अंगहार है। अंगहार का अर्थ होता है शरीर को चलन अंगहार करणों के समूहों से बनता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने अंगहार पद की व्याख्या इस प्रकार की है-

अंगानां देशान्तरे समुचिते प्रापणप्रकारोअंगहारः।

हरस्य चायं हारः प्रयोगः।

अंगनिर्वर्त्यो हारोअंगहारः।

अर्थात् वह प्रधान नृत्य प्रकार जो संक्षिप्त (छोटे) करणों के द्वारा निष्पण होता हो, अंगहार है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार दो करणों के संयोग से एक मातृका बनती है, नृत्य करते समय अंगहारों के तरह-तरह के प्रयोग होते है। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रातःकालीन कार्यक्रम में किये जाने वाले नृत्य को अंगहार कहते है। कुछ विद्वानों के अनुसार अभिनय की एक भाग की समाप्ति के पश्चात् हाव-भाव युक्त मुद्राओं में किये जाने वाला नर्तन अंगहार है। भरतार्णव में नौ प्रकार के अंगहारों का वर्णन है और प्रत्येक का सम्बन्ध रस, तथा सौन्दर्यशास्त्र से जोड़ा गया है। भरत ने नाट्यशास्त्र में बत्तीस अंगहारों का लक्षण सहित वर्णन किया है।

रेचक: रेचक शब्द का अर्थ होता है सांस को नाक के एक तरफ से छोडने को या फिर वह क्रिया जिसमें ली गई सांस को नाक से एक तरफ से छोड़ा जाए। यह प्राणायम की एक क्रिया है।

नृत्य में अंगों को गोल घुमाने की क्रिया को रेचक कहते हैं। यह गोल घुमाव लेने के अर्थ से प्रयुक्त होता है या इसे रेचक इसलिए भी कहते हैं कि यह ऊपर की ओर (उठाव लेकर) गतिशील होता है या पृथक्-पृथक् चाल से गतिशील रहता है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में चार प्रकार के रेचकों का लक्षय सहित वर्णन किया है।

(1) पादरेचक (2) कटि रेचक (3) हस्तरेचक तथा (4) ग्रीवा रेचक

नृत्य प्रयोग में विधि-निषेध: भारत ने नाट्यशास्त्र में नृत्य के अवरसों का स्पष्ट विवरण दिया है। यह तो ज्ञात है कि भरत ने उन अवसरों का भी वर्णन किया है जिन पर नृत्य का स्वतंत्र प्रयोग हो सकता है और किस-किस अवसर पर इसका प्रयोग नहीं हो सकता इसका भी विस्तृत विवरण है।

नृत्त के अवसर

1) नाट्यवेत्ता जब गीत की या वर्णा की विषय वस्तु के अंगो में अत्यन्त समीपतर स्थिति हो या किसी पात्र के अभ्युदय का (रूपकों की कथा वस्तु में) अवसर हो तो इस अवसर पर नृत्त की योजना की जानी चाहिए।

2) जहा नायक-नायिका (दम्पति) का प्रण्याश्रित सामीप्य हो तो उनके अनिशय हर्ष (आनन्द) को प्रस्तुत करने के लिए या उनके आनन्दार्य 'नृत्य' की योजना की जाए।

3) रूपक के उस दृश्य में जहां नायक, नायिका के समीप हो, मन भावन ऋतु या अनुकूल समय दिखाई दे, तब गीत के अर्थ के प्रदर्शक या अर्थ से सम्बद्ध 'नृत्य' की योजना करनी चाहिए।

4) रूपक के किसी विभाग (कथा वस्तु) में नायिका को हर्ष की उपलब्धि हो तो उस प्रसंग में 'नृत्त्य' की योजना की जाए जो उस स्थिति की पूर्णता तक प्रदर्शित होता रहे।

5) यदि रूपक का कोई विभाग देवताओं की प्रार्थना से संबंद्ध हो तो वहां आवेगपूर्ण अंगहारों से युक्त 'नृत्य' करना चाहिए।

6) जहाँ स्त्रा तथा पुरुष पात्रों का श्रृंगाररस से संबद्ध हो तो वहं आवेगपूर्ण अंगहारों से युक्त 'नृत्य' करना चाहिए।

7) यह नृत्य स्वतन्त्र रूप से विवाह, जन्म, देवपूजा, ऋतुपर्व और विजयोत्सव आदि के अवसरों पर भी किया जा सकता है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में ऐसे अवसरों का भी उल्लेख किया है जहां नृत्य निषिद्ध रहना चाहिए या जहां नृत्य शोभा नहीं देता।

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

नृत्य के लिए निषिद्ध अवसर

1) रूपक के जिस अंग में नायिका, नायक से 'खिंडता' या 'विप्रलब्ध' हो गई हो वहां नृत्य की योजना नही करनी चाहिए।

2) जहां दो सखियों का संवाद चल रहा हो, नायिका के समीप प्रियतम न हो, या प्रोषित हो तो नृत्य की योजना नहीं करनी चाहिए।

3) यदि दूती के द्वारा ऋतु या समय का वर्णन किया जा रहा हो और औत्सुक्य या चिन्ता युक्त अवस्था का अनुभव किया जा रहा हो तो नृत्य की योजना नहीं करनी चाहिए।

जहाँ नृत्य का प्रयोग निषिद्ध है, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो ये ऐसे स्थल या प्रसंग है जहाँ वेदना पूर्ण दृश्य प्रदर्शित होते हैं, जैसे खंड़ित नायिका का दृष्य, या ऐसी नायिका जिसका प्रेमी बिछड़ा हुआ हो इससे यह बात संकेतित होता है कि नृत्य आलादकारी काल में या वीर और पराक्रम की दृष्टि में ही समायोनित किये जाते थे।

निष्कर्ष

भारतीय नाट्य में नृत्य का प्रयोग प्राचीन समय आधुनिक के नाटकों में भी नृत्य की परंपरा विद्यमान है। यह नृत्य शास्त्रीय व लोक शैली पर आधारित रहते है। परन्तु नाटक की विभिन्न परिस्थितियों में नृत्य का प्रयोग अवश्य किया जाता रहा है। इसे नाट्य को अलंकृत करने के उदेश्य से ही इसमें सम्मिलित किया गया। नृत्य किसी अर्थ विशेष की अभिव्यक्ति की उपयोगिता से रहित है, परन्तु इसे नाट्य में शोभा की सृष्टि के लिए संयोजित किया जाता है। इसका प्रयोग नाट्य में पूर्वरंग की शोभा और सौंदर्य प्रसार के लिए होता है।

संदर्भ

अभिनय दर्पण, डा॰ एम॰एम॰ घोष कलकत्ता, 1934
संगीतरत्नाकर ;1-4 भागद्ध शारंगदेव, अड़यार लाइब्रेरी 1943-1953
अमरकोश, अमरसिंह, निर्णय सागर, मुम्बई 1940
सिद्धान्त कौमुदी ऋ भट्टोजी दीक्षित, वेंकटेशवार प्रेस मुम्बई, 1926
नाट्यशास्त्र, भरतऋकाव्यमाला संस्कृरण, मुम्बई, 1942
नाट्यशास्त्र ;अभिनव भारतीय टीकाद्ध अभिनवगुप्ताचार्य, परिमल प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1988
शब्द कोष - ;प्रो॰ आर॰ सी॰ पाठकद्ध
भरतार्णव ऋ नन्दिकेश्वर, चैखम्बा, वाराणसी, 1978
नर्तन निर्णय, पुंड़रीक विट्ठल, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर दिल्ली 1994